शैवसिद्धान्त रत्न

श्रीमान श्री स्वामी विद्याधर जी महाराज
का

जीवन चरित्र

द्वितीय संस्करण 2006

समर्पण

अपने पूज्य गुरु भ्राता

एवं सहयोगी

वैकुण्ठवासी श्री बद्रीनाथ प्रसाद

दिल्ली

की पुण्य स्मृति में

सादर समर्पित

विश्वनाथ

'सक्र0 ट्रस्ट'

श्री स्वामी विद्याधर स्वामी महादेव

शैव आश्रम पलौड़ा जम्मू

विषय सूची

अध्याय		विषय
1.	कश्यप भूमि और शैवसिद्धान्त	1
2.	श्री स्वामी जी की गुरू परम्परा	6
3.	बाल्यावस्था और गृहस्थाश्रम्	10
4.	वैराग्य और मुमुक्षिता	16
5.	गृहस्थ त्याग	20
6.	गुप्त, भंयकर स्थानों में निवास	23
7.	श्री अमर नाथ गुफा में एकान्त वास	30
8.	पवित्र स्थानों में भ्रमण	35
9.	मौन व्रत और महायज्ञ	36
10.	अनेक तीर्थों की यात्रा	39
11.	सामाजिक सुधार	41
12.	शैवाश्रम का निर्माण	44
13.	शरीर त्याग का परिचय	46
14.	शिवलोक प्रस्थान	50
15.	आदर्श जीवन	59
16.	श्री गुरू आरती	71

ऊों शिवाय गुरुवे नमः।।

कश्यप भूमि और शैव सिद्धान्त।।

कश्मीर का पवित्र देश संसार भर में केवल अद्भुत दृश्य, स्वच्छ वायु और निर्मल जल इत्यादि के कारण ही प्रसिद्ध नहीं अपितु यह विध्या का केन्द्र तीर्थों की भूमि और ऋषियों मुनियों का निवास स्थान होने के कारण भारतवर्ष का शिखर माना गया है। यहाँ के अलौकिक पर्वत वन नदियां और फल फूल सदा ही अन्यान्य देशवासियों के लिये आकर्षण के हेतु बने हैं और जप तप तथा योग के अभिलाषी सज्जनों ने इस रमणीक देश को अपना स्थान बनया है।

कश्यप ऋषि का यह उत्तम देश उत्कृष्ट सिद्धांत शिवाम्नाय का मूल स्थान है, यहां ही इस त्रिकमत् के प्रसिद्ध आचार्यो ने जन्म लिया और यहां ही से इस अद्वैत मार्ग सम्बन्धी अमूल्य ग्रंथ लिखे जाकर शैवमत का प्रचार हुआ।

कलियुग से पहले यही उत्तम सिद्धान्त प्रचलित था परन्तु इस युग के आदि में जब इस अद्वैत मार्ग के आचार्य वनों और गुफाऊँ में चले गये और दूसरे मत मतान्त्रों ने भी जन्म लिया और इस आदि सिद्धान्त का लोप होने लगा तो मनुष्य मात्र के उपकार और उद्घार के लिये स्वयं भगवान महादेव जी महाराज ने श्री श्रीकणठ नाथ जी का अवतार धारण किया और इस रूप से श्री दूर्वासा महर्षि जी को कैलाश पर्वत पर इस अनुत्तर विद्या का उपदेश किया और उन्हें इसके प्रचार का आदेश दिया। महर्षि ने आज्ञा पालन के प्रयोजन से अपने योग बल से तीन मानसिक पुत्र तथा शिष्य श्री त्रिम्बकादित्य श्री अमरकादित्य और श्री नाथादित्य उत्पन्न किये, श्री त्रिम्बकादित्य ने अद्वेतवाद, श्री अमरकादित्य ने "द्वैत वाद" और श्री नाथादित्य ने द्वैताद्वैत का प्रचार किया।

इस के पश्चात् इसी योगबल के क्रम से पन्द्रह सिद्ध हुये जिन्होंने अपने–2 सिद्धान्तों का प्रचार किया – श्री त्रिम्बकादित्य की शाखा के

अन्तिम सिद्ध ने ग्रहस्थ धारण किया और श्री सङ्घामादित्य को जन्म दिया। यह सङ्घमादित्य जी घूमते–घूमते कश्मीर आये और उन्होनें यहां की पवित्रता और रमणीक दृश्यों से आकर्षित होकर यहां ही निवास किया इन के वंश से गौरवशाली श्री सोमानन्द जी हुये। जिन्होंने शैवसिद्धाँत पर एक अमुल्य ग्रंथ 'शिव दृष्टि' लिखा है। इस सिद्धान्त के पुनरजीवित होने के पश्चात् इन को ही त्रिकमत का आदि गुरु कहा जा सकता हैं।

श्री सोमानन्द जी मान्यवर श्री वसुगुप्ताचार्य के शिष्य बतलाये जाते हैं। श्री वसुगुप्ताचार्य जी वही महापुरूष हैं जिन्हें भगवान् महादेव जी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि वह महादेवगिरि के नीचे एक बड़ी शिला पर लिखे हुए शिवसूत्र प्रकट करें। यह शिला अब तक "शङकरपल" के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीमान जी ने 'स्पन्दामृत' और श्रीमद्भगवद् गीता का वासवी टीका भी लिखी हैं। श्री सोमानन्द के शिष्य महाविमर्शघन श्री उत्पलदेवाचार्य थे। जिन्होंने शैवमत का

प्रसिद्ध ग्रंथ 'ईश्वर प्रतिभिज्ञा' लिखा है और "शिवस्तात्रावली" "ईश्वर सिद्धि" और 2 ग्रंथ भी बनाये हैं। और इस अनुत्तर सिद्धाँत को भली प्रकार से प्रकाशित किया हैं। इन के शिष्य और सुपुत्र श्री लक्ष्मण गुप्ताचार्य थे। इनके बनाये हुये ग्रन्थों का कोई पता नहीं चलता। इन के शिष्य त्रिकमत् के महान् आचार्य श्री अभिनवगुप्त जी थे।

श्री अभिनवगुप्त जी ने केवल दूसरे मान्यवर आचार्यों के रचित ग्रन्थों की टीकायें ही नहीं लिखी हैं अपितु स्वयं भी अद्वैतमत के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। जिन में मालिनीविजयवार्तिकम, परात्रिंशिका, प्रतिभिज्ञा विमर्शिनी तन्त्रालोक तन्त्रसार–परमार्थसार–शिवदृष्टि आलोचना–बोध –पण्च–दशिका–प्रकरण स्तोत्र–भैरवस्तोत्र इत्यादि प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि श्रीमान् जी 'गुप्त गंगा' नाम वाले ग्राम में रहते थे और अन्त में अपने शिष्यों सहित भैरव गुफ़ा में प्रवेश किया। जो भीरू नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ के रूप में अब तक ख्यात है।

श्री अभिनवगुप्त जी के प्रधान शिष्य विध्याभण्डार श्री क्षेम राज जी थे। जिन्हें उन्होंने भैरव गुफा में प्रवेश करने से पहिले त्रिकमत के प्रचार के लिए बाहिर ही छोडा था। यह श्रीमान जी के परिश्रम और लोकहित के विचार का फल है कि यह अद्वैत सिद्धांत अब तक हमारे देश में जीवित है। उन्होंने अनेक शैव शास्त्रों की टीकायें लिखी हैं और अपने भी कई ग्रन्थ बनाये हैं जिन में प्रतिभिज्ञा हृदय–शिवसूत्र विमर्शिनी– शिव सूत्र वृत्ति–स्पन्द सन्दोह और सपन्द निर्णय प्रसिद्ध हैं श्री क्षेमराज के शिष्य श्री योगराज जी थे। कई इतिहास लेखकों का विचार है कि वह श्री अभिनव गुप्त जी ही के शिष्य थे परन्तु उन्होंने अपने परमार्थसार ग्रंथ में अपने आपको श्री क्षेमराज जी का शिष्य प्रकट किया हैं। हां उन्होंने निःसन्देह अभिनव गुप्त से यह अनुत्तर विद्या प्राप्त की थी परन्तु गुरु–उपदेश श्री क्षेमराज जी से ही प्राप्त किया था।

श्री स्वामी जी की गुरु परम्परा।।

बहुत समय व्यतीत होने पर इस अनुत्तर विद्या रूपी कल्प–वृक्ष की शाखा के एक प्रसिद्ध योगिश्वर श्री ईश्वर स्वामि पाद हुए। जिनकी साक्षात अवधूत अवस्था थी वह आठों पहर विमर्श में मग्न रहते थें। देहाभिमान नाम को भी शेष नहीं रहा था। यहाँ तक कि खाने पीने की सुध बुध तक भी नष्ट हो चुकी थी। माता मुँह में ग्रास डालती तो वह मुँह में ही पड़ा रहता। जब तक कि वह स्वभाव से ही निगल न जाता। एक बार रात्रि के समय आंगन में लघुशङ्का के लिए उतरे। शौच का अभ्यास बन चुका था। स्वभाव से हाथ जल के लिये खुले पडे रहे। और वहीं पर ही समाधि लग गई ऊपर से बर्फ पड रही थी उसी के नीचे दब गए प्रातः काल जब घर के लोगों ने देखा तो हाहाकार मचा। दूसरे एक दिन यह शिवचतुरदीशी का शुभ दिवस था

और देशा के रईस पण्डित–महानन्द दर ने अपने घर निमन्त्रित किया था। यहाँ एक अलग कमरे में पढे रहे। रात को मांस भुनने की गन्ध चारों और फैली, पूछताछ पर विदित हुआ कि महात्मा समाधिनिष्ठ हैं दहकते हुए कोयलों की कांगडी उलटी हुई है और उनकी टांग जल रही है। ऐसी अवस्था के होते हुए भी पूर्व स्वभाव नहीं भूला था जिह्वा से यदि बात नहीं करते थे पर कोई भक्तजन यदि घोडा लाया झटपट उस पर सवार हो जाते और भक्त जहां चाहता उन को वहां ले जाता। ऐसी ही कितनी घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। जिनसे श्रीमान् की नित्योदित अन्तरमुख अवस्था का पता लगता हैं।

उन्होंने अपने भाग्यशाली भतीजे श्री स्वामी राम जी महाराज को इस अनुत्तर त्रिकमत के सिद्धान्त का उपदेश किया। इन से पहले इस कुल में नव महानुभाव महात्मा इस मत के अनुयायी हुये थे।

श्री स्वामिवर श्रीराम जी इसी उत्तम ब्राह्मण कुल के एक प्रसिद्ध महात्मा श्री शुकदेव जी के सुपुत्र थे संवत् 1910 वि0 में उत्पन्न हुए और 1971 विक0 में शिव चतुर्दशी के उत्तम दिन शिवधाम को पधारे। श्रीमान् अपने समय के उच्च पदवी के महात्मा थे। अपने योगाभ्यास और विमर्श बल से जीवनमुक्तावस्था प्राप्त की थी। साक्षात् शिव मूर्ति थे। उनके चरित्र आदि में अंत तक अलोकिक और वाक् सिद्धि के चमत्कार आश्चर्यजनक हैं। पूर्ण ज्ञान घन विमर्शशाली और सामर्थ्यवान् थे उस समय के कश्मीर नरेश श्री महाराजा प्रताप सिंह जी स्वर्गवासी उनके चरणों पर शीश नवाते थे। उनकी कृपा दृष्टि से अनेक आर्तजनों की एहिक आमुष्मिक् कामनायें पूरी हुई। विशेष समय स्वात्मविचार में व्यतीत करते। शरीर कुछ निर्बल सा था। जिसके कारण बहुत समय तक एक ही स्थान पर रहे। शैव सिद्धान्त का क्रियात्मक रूप से अनुभव करके स्वात्मज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त किया था। श्रीमान् जी चोटी के विद्वान भी

थे ओर सच्छिष्यों को शैव शास्त्र पढ़ाते रहे और उन्हें इस अद्वैत, मत का उपदेश किया। शरीर त्याग का पहले ही अपने शिष्यगणों को संकेत दिया था। श्रीमान जी ने श्रीमनकाक् मुंगा से विद्या प्राप्त की थी।

श्रीमान् जी का आश्रम फतेहकदल श्रीनगर में "श्रीराम शैवाश्रम" के नाम से प्रसिद्ध हैं। वहां आज कल भी उनके शिष्यगण और सज्जन नित्यप्रति सत्सङ्ग और अध्ययन् प्रचलित रखकर अपना जन्म सफल करते हैं और अभिलाषी पुरूषों को भी शैवग्रन्थ पढा कर उपकार कर रहे हैं और अपने मान्य गुरु महाराज के जन्मोत्सव और निर्वाण महोत्सव बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाते हैं। (विस्थापन के बाद उनके दो आश्रम जम्मू में स्थापित किए गए हैं एक त्रीलोकपुर गोल गुजराल जम्मू में तथा दूसरा जानीपुर जम्मू में आजकल भी फतेह कदल आश्रम की तरह चल रहें हैं।)

बाल्यावस्था और गृहस्थाश्रम्।।

मान्यवर श्री रामजी महाराज की शिष्यमण्ड़ली में से श्री स्वामी विद्याधर जी महाराज ने जिन का यह जीवन चरित्र प्रकाशित किया जा रहा है अपनी बुद्धि कुशलता वैराग्य और तपोबल से अनुत्तर पद प्राप्त किया और त्रिकमत के तात्विक सिद्धान्त को भले प्रकार से ग्रहण करके उस पर क्रियात्मक रूप से कटिबद्ध रहे और एक आदर्श जीवन प्रकट किया।

श्री स्वामी विद्याधर जी महाराज ब्रह्मण वंश के एक उत्तम कुल के प्रसिद्ध सज्जन श्री गण काक जी के सुपुत्र थे। जात राजानक खोनुमुषी और गोत्र कणठ दौभ्यायन था। निवासस्थान सथू शीतल नाथ श्री नगर था। श्रीमान् जी की पूज्य माता जी श्रीमती हारमाली जी मल्लयार के एक माननीय महात्मा श्री जगद्धरजी खरू की सुपुत्री थी श्रीमान् जी ने संवत् 1942 विक्रमी की आषाढ़ शुल्क पक्ष

त्रियोदशी के शुभ दिन जन्म लिया जन्म कुण्डली निम्नलिखित है:—

(जझे लग्न धनुषि सविधौ यस्तु मीनेथ केतो
भौमे सौरे रति गृहगते कर्कटे चौष्णरश्मौ
शुक्रे झेज्ये नवगृहणे कन्याकायां च राहौ
तं श्री विद्याधर गुरु वरं स्वात्म रामं नममि।।

जन्म चक्र

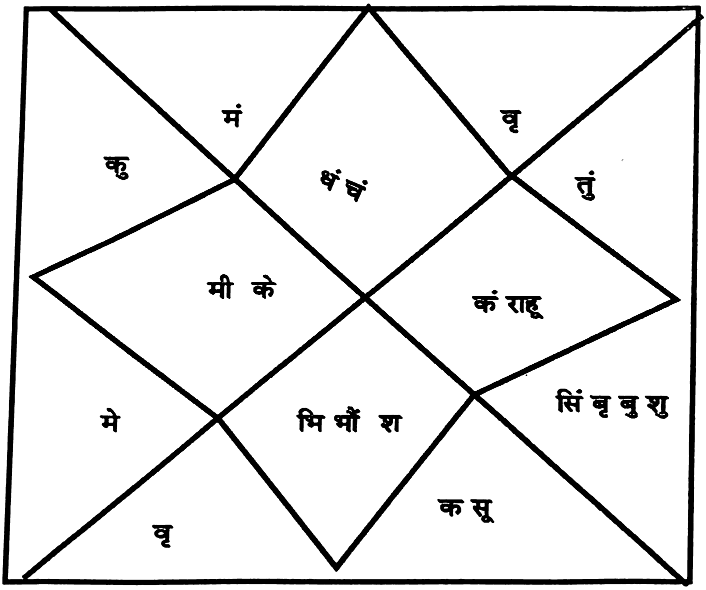

श्री स्वामी जी छः वर्ष ही के थे कि उनके पूज्य पिता जी स्वर्ग वासी हुये। और अब श्रीमान् जी अपने ज्येष्ठ भाई श्री गोपी नाथ जी की जो एक प्रसिद्ध विद्वान और उपासक ब्रह्मण थे आज्ञा में रहें। उसके पश्चात् श्री स्वामी जी के अठाईस वर्ष की आयु में उनकी पूज्य माता जी का भी देहान्त हुआ।

बाल्य अवस्था में श्री स्वामी जी ने ब्राह्मण कर्मियों की रीति के अनुसार अपने घर में ही विद्या का आरम्भ किया और फिर कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान श्री माधव जुव चंद्र और श्री राज काक जी गंज के पास कर्म काण्ड संबन्धी पुस्तकों का अध्ययन करते रहें। उसके पश्चात् राजकीय पाठशाला विशारद तक संस्कृत और व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन काल में श्रीमान जी की बुद्धि कुशलता और प्रतिभा अध्यापक जनों के लिये कौतूहल कारक तथा सहपाठकों के लिए आश्चर्य जनक रही। घर में भी श्रीमान जी ने अपने आचार और कर्तव्य से अपनी माता जी और दूसरे संबंधियों को सदा

ही प्रसन्नचित रखा और सबकी प्रशंसा के पात्र बने रहे।

पंद्रह वर्ष की आयु में श्रीमान जी का विवाह एक उच्चकुल के ब्राह्मण श्री ऋषिकाक कालू की सुपुत्री श्रीमती पद्‌भावती जी से हुआ। उनके घर में पधारते ही ग्रहस्थ व्यवहार को (जो पहले भी शोभायमान था) और भी चार चान्द लग गये। श्रीमती जी प्रेम की मूर्ति थीं इन के दर्शन और मधुर भाषण ही से चित में अलौकिक सन्तोष उत्पन्न होता था। अपनी सास देवर और दूसरे ग्रहस्थ संबन्धियों को सेवा आदर और प्रेम से सन्तुष्ट किया। ग्रहस्थ धर्म के पालन में श्रीमती जी अति निपुण थी। अतिथि पूजा, साधु सेवा और सहनशक्ति उनमें पूर्ण रूप से विद्यमान थी। विशेषतः उनकी पति भक्ति की उपमा मिलनी कठिन है। यदि पतिदेव ने पूर्ण योवनावस्था में जब उनकी अवस्था 28 वर्ष की ही थी गृहस्थ का त्याग किया परन्तु श्रीमती जी का आचरण गृहस्थ में रहकर ही एक आदर्श बना रहा। यहां तक कि

नदी पर हाथ मुँह धोने स्नानादि क्रिया से भी विरत रहकर घर में ही पडी रहती और वहाँ पर ही असङ्ग भाव से ग्रहस्थ का व्यवहार करते हुये भी भगवद्‌चिन्तन में और पतिदेव के स्मरण में तल्लीन रहती थी। वास्तव में श्रीमती जी की इस प्रकार की कठिन तपस्या आप के पतिदेव के तप से उत्कृष्टतर कही जा सकती है। श्रीमती जी ने सब संसारिक कलेश विशाल हृदय के साथ सहन करके अपने तपस्वी पतिदेव के चित्त को कभी भी विक्षिप्त करने का साहस न किया केवल उनके ध्यान मे मग्न रहती। आप के गर्भ से दो पुत्र और दो कन्यायें हुई थी। पतिदेव के त्याग के पश्चात् एक पुत्र और एक कन्या की मृत्यु हुई। श्रीमती जी स्वामी जी के गृहस्थ त्याग के पश्चात् कभी भी उनकी सेवा में उपस्थित न हुई। हृदय में ही स्मरण तत्पर रही। केवल श्रीमान् जी के शिवलोक गमन के जरा पहले आपके जीवित शरीर के दर्शन किये और उसके पश्चात् सात वर्ष गृहस्थ में ही पडकर जेष्ठ शुक्लपक्ष पूर्णिमा

2013 विक्रमी को शिव लोक को शिव शिव करते–2 पधारी।

श्री स्वामी जी की कर्तव्य परता और आचार में आदि ही से सुन्दर भविष्य के चिह्न प्रकट थे। जहाँ गृहस्थ धर्म पालन, अतिथ्यि पूजा और परोहित कर्म में अत्यन्त निपुण थे, वहां भगवत स्मरण विवेक और वैराग्य, इन भाग्यशाली के कर्तव्य से पूर्ण रूप से प्रकट थे। श्रीमान जी की तीक्षण बुद्धि विशाल हृदय और आर्जव के कारण केवल उनके यजमान भी उनका यथा योग्य मान और सत्कार करते थे। तथा जिन–2 पुरूषों को उनके साथ किसी प्रकार का संबन्ध होता था। वह सब उनकी प्रशंसा करते थें। गृहस्थ व्यवहार समाप्त करके श्रीमान जी अपना शेष समय शास्त्र अध्ययन में व्यतीत करते थें। और सदा ही विमर्श तत्पर रहते थें। घर में सर्वकाल भगवत् चर्चा रहती थी। ओर यजमानों के घरों में भी धर्म अर्थ काम मोक्ष के यथायोग्य उपदेशों द्वारा आचार विचार का प्रचार किया करते। अभेद भक्ति के श्लोक अपने परम प्रेम प्राचुर्य

स्वाभाविक मधुराति मधुर कण्ठ से गा गा कर तो श्रोतागणों के स्वयं चित्तचोर बने रहते थे। इस बात में अनुमात्र भी सन्देह नहीं कि आपके भाषण और गायन में अदभुत आकर्षणशक्ति का प्रादुर्भाव रहती थी।

।। वैराग्य और मुमुक्षिता।।

स्वात्मोद्धार की शुभ और दृढ़ इच्छा और पूवर्जित पुण्य कमों के परिपाक ने उस समय के सुप्रतिष्ठित और सुप्रसिद्ध योगीन्द्र और साक्षात् शिव स्वरूप श्री स्वामि श्री रामजी महाराज के परम पावन श्री चरणों की ओर आकर्षित किया जो उनके मस्तक के देखते ही बहुत प्रसन्न हुए और उनको शैवग्रंथों के अध्ययन की आज्ञा दी। श्री स्वामी जी ने संस्कृत भाषा और व्याकरण में पहले से ही निपुण होने के कारण इस अनुत्तर मार्ग की प्रक्रिया और सिद्धान्त को सुगमता से ही ग्रहण किया और थोडे ही समय में अपनी ही बुद्धिमत्ता परिश्रम और शुद्ध स्वभाव से अपने

पूज्य गुरु महाराज को अत्यन्त प्रसन्न रखा। स्वामी जी की भक्ति, मुमुक्षि भाव और पूर्ण पात्रता देखकर गुरु महाराज ने उनके भाग्य की प्रशंसा करके उनहें त्रिकमत की दीक्षा प्रदान की। इस वार्ता को सच्छिष्यों ने गुरुस्तुति के इस श्लोक में ग्रंथित किया है।

श्री श्रीकण्ठादनुपम फला याहि सन्तान शाखा
याता तस्या समधिगतवान् शैश्वे शक्तिपातात्
श्री रामाख्यं गुरुमऽथ च तत् सेवयाऽवाप्त धीर्य
स्तं श्री विद्याधर गुरुवरं स्वात्म् रामं नमामि।।

मान्य गुरु महाराज के अनुग्रह ने स्वामी जी के हृदय में मुमुक्षता की अग्नि को प्रज्वलित किया। जिसके प्रकाश से विमर्श–शक्ति जाग उठी। और प्रचण्ड से मलरूपी आवरण भस्म हो गये। श्रीमान् जी के आचरण से आश्चर्य जनक चमत्कार प्रकट होने लगे। गृहस्थ व्यवहार से मन उचाट हो गया। और संसारिक विषय भोग तुच्छ दिखाई देने लगे अब वह अधिक समय अपने पूज्य गुरु महाराज के श्री चरणों

की सेवा और शास्त्राध्ययन में व्यतीत करने लगे। और घर में भी प्रायः विविक्त सेवी ही बने रहते।

श्री स्वामी जी अब गृहस्थ व्यवहार पूर्ण असड्ग भाव से निबाहने लगे। जीविकार्थ यदि यजमानां के हाँ जाना अपरिहार्य था पर उनकी हर एक चेष्टा से उनकी विरक्ति और संतोष वृति प्रकट होने लगी जिस से आपका मान और स्नेह यजमानों के ह्रदयों में ही क्या सब संबन्धियों और अन्य पुरूषों के चित्तों में घर कर गया। साथ ही आपके घर बसाने के ढ़ंग भी शिथिल पड़ने लगे। शनै–2 गृहस्थ व्यवहार और यजमानों के हां आना जाना भी त्यागना आरम्भ किया। अधिक समय शास्त्रपरामृत चिन्ता ओर स्वात्म विचार में ही व्यतीत करने लगे। हाँ ऐसी दशा में भी यदि कोई भक्तिजन जिज्ञासु शास्त्राध्ययन का अभिलाषी आपकी सेवा में उपस्थित होता तो बडे प्रेम और उत्साह से उस को पढ़ाते। कुच्छ समय पश्चात् यह अवस्था भी न रही। गृहस्थ में रहकर भी प्रायः

अपने कमरे का द्वार अंदर से बंद करके आत्म परामर्श में मग्न रहते।

सं0 1971 वि0 में श्री स्वामी जी के साक्षात् शिवस्वरूप गुरु महाराज शिव चतुर्दशी के पवित्र अवसर पर शिवधाम को पधारे उस दिन से गृहस्थ में पडा रहना भी दोभर प्रतीत होने लगा और नगर से दूर एकान्त निवास की प्रबल आकृष्टि का भान होने लगा।

घर में पूज्य माता जी का देहान्त हो चुका था। अपनी धर्म पत्नी की सहन शक्ति और सती भाव पर पूर्ण विश्वास था। अपने पिता समान ज्येष्ट भ्राता जी से परिवार के पालन पीषण की आशा थी– यूं तो यह सब कुच्छ कहना व्यवहारिक दृष्टकोण से सच है परन्तु तात्त्विक दृष्टिकोण पर ही आपका अटल विश्वास था और भगवान के अमोध श्री वाक्यों "धाताहं विश्वतो मुखः" "अनन्याष्चिन्तयन्तों मां. .... योगक्षेम्बहाम्यहं" पर ही आप का दृढातिदृढ विश्वास नित्य निर्भर था।

गृहस्थ त्याग

श्रीमान् जी सं0 1975 में घर से चल पड़े कुच्छ दिन थजीवारा के पुण्य तीर्थ पर ठहर कर 'त्राल' ग्राम में गये जहाँ श्री अमर चन्द पण्डित के घर में निवास किया यहां से 'कमलाबन' में जाते और वहां एकान्त वास का आनन्द लेते अभी थोडा ही समय व्यतीत हुआ था कि श्री महताब काक जी का जो श्रीमान्यवर स्वामी रामजी महाराज के निर्वाण के पश्चात् मुख्य शिष्य होने के कारण आश्रम के अधिष्ठाता थे पत्र आया कि स्वामी जी अपने परिवार में लौट आये अपने मान्य ज्येष्ट गुरु भ्राता की आज्ञा का उल्लङ्घण उचित न जानकर श्रीमान जी फिर श्रीनगर आए और एक वर्ष तक फिर अपने परिवार में रहे परन्तु पूर्ण असङ्ग भाव अत्यन्त वैराग्य चित के साथ गृहस्थ और यजमानों के साथ कोई संबन्ध न था। हर समय एकान्त में बैठ कर अभ्यास और विमर्श में मग्न रहते और अनेक शैव–ग्रंथों का अध्ययन करते रहते।

गृहस्थ से निकल कर फिर उस में प्रवेश करने से श्री स्वामी जी के चित में गृहस्थ त्याग की इच्छा में अनुमात्र की न्यूनता नहीं हुई। हर समय गृहस्थ त्याग का विचार मन को सताता रहता कभी–कभी ऐसा भी सोचते कि गृहस्थ में रहकर भी गृहस्थ का न होना ही परम धर्म है।

सत्य है कि जब मनुष्य की इच्छा दृढ़ और संकल्प शुद्ध हों तो भगवान् उसकी सफलता में अदृष्य सहायता करतें हैं। एक दिन किसी भक्तजन को एक ग्रन्थ पढ़ा रहे थे उसकी पोथी हाथ में लेकर स्वामी जी यों चित्त ही चित्त में कहने लगे, "भगवान् गृहस्थ के झंझटो से अति दूर रहकर आप के ही नित्यस्मरण में मग्न रहने की दृढ़ काँक्षा है आज्ञा दीजिए" यह कहते ही पोथी जो खोली सामने एक श्लोक पर दृष्टी पड़ी जिसका अर्थ यों है :–

"जब क्षीरसमुद्र के मंथन के समय इस से चन्द्रमा उदित हुआ तो भगवान् महादेव ने उसे अपने मस्तक पर धारण किया। "

श्लोक देखते ही सारा शरीर पुल्कायमान हुआ नेत्रखुल गये हृदय विकसित हुआ। सोंचने लगे कि जब भगवान इतने दयालु और भक्तवत्सल है कि अपने प्रेमी समुद्र की सन्तान चन्द्रमा को अपने मस्तक पर स्थान प्रदान किया तो क्या यह संभव हैं कि दास के परिवार को अपने चरण कमलों के नीचे ही सहारा न देंगें। वैराग्य और विचार रूपी वायु ने संशयों और बाधाओं के मेघो को छिन्न भिन्न किया। विकसित हृदय में सत्यमेघा का सूर्य पूर्ण प्रकाश के साथ प्रकाशित हुआ। इस पूर्ण निश्चय रूप प्रकाश में स्वतन्त्र महादेव का स्मरण करते हुए घर से चल पड़े। और इस के पश्चात् गृहस्थ में कभी प्रवेश नहीं किया। सच्छिष्यों ने इस वार्ता का संकेत इस श्लोक में दिया हैः–

देहाद्यात्मेत्यखिल जगतां आन्ध्यपूर्णो विवादः
स्तुच्छेद्यो यदपि च शिवः शास्ति "चैतन्यमात्मा"
आमृश्यैवं विपिनमगमत् रागजालस्यच्छित्त्यै
तं श्री विद्याधर गुरु वरं स्वात्मरामं नमामि।।

घर से चल कर श्री स्वामी जी सीधे त्राल पहुंचे। कुछ समय वहां निवास किया। फिर शोपयान, बिजबिहारा, कोटसू यत्यादि स्थानों में घूमते रहे। जहाँ ठहरे अत्यन्त आनन्द में रहे। अधिक से अधिक समय स्वात्मविमर्श में ही व्यतीत करते। और थोडा सा समय ग्रामवासियों के साथ बैठ कर उनको सत्संग का लाभ प्रदान करते। जहां भी जाते वहां ही उनकी उपासना के प्रभाव से जंगल में मंगल हो जाता। दूरदूर से लोग उनके दर्शनों के लिये आते और भगवद् चर्चा का लाभ उठाते।

गुप्त भयंकर स्थानों में निवास।।

कुछ समय के पश्चात् आपका चित्त बर्हिमूर्खता से ही विरक्त हुआ और जन पद के ग्रामों से दूर रहकर एकान्त स्थानों में रहने की इच्छा उत्पन्न हुई और 'कार्कूट नाग के घने वन की जीवों का निवास होने के कारण अत्यन्त भयानक बताया था परन्तु श्रीमान जी के हृदय

में अद्वैत शासन के तात्त्विक सिद्धान्त के अनुभव से पूर्ण निर्भयता आई थी और वह दृढ़ निश्चय के साथ उठे और कार्कूट नाग की ओर चल पडे।

किसी ने कहा था कि उस प्रान्त का एक प्रसिद्ध पुरूष श्री प्रसादजुव सालिया बडा भगत और साधु सेवक है उनकी सहायत से उस भयानक वनवास में कुछ सुगमता हो सकती है। इस लिये कार्कूट नाग जाते हुए सालिया ग्राम में उनके यहां ठहरे। वहां तीन चार पुरुष ताश खेल रहे थे। श्रीमान् जी इस खेल से अनजान होने के कारण उनकी क्रीडा को आश्चर्य से देखते रहे। उन्होंने देखा कि दुगी से दहले तक हर पत्र अपने से अल्प चिन्ह वाले पत्रों पर विजय पाता है और दहले को राजा का भृत्य (गुलाम) खाजाता है पर उसको रानी और रानी को राजा जीत लेता हैं। इस प्रकार तो भृत्य को नव पत्रों पर रानी को दस पत्रों और राजा को 11 पत्रों पर विजय और अधिकार प्राप्त होता है। पर 'एका' अर्थात् एक चिन्ह वाला पत्र सब

से प्रबल है और राजा को भी ग्रास करता है। गहरे विचार में पडे। एकीभाव का इतना बल और प्रभाव। यदि यह बात है तो पूर्ण अद्वैत स्वरूप स्वतंत्र महादेव के एकीभाव का आसरा छोडकर धन और मान वाले पुरूषों से सहायता की आशा रखनी बुद्धिमानी नहीं। धीरे से उठे और अनुत्तर शक्ति के अदृष्ट प्रभाव का आसरा लेकर कार्कूट वन की ओर चल पडे।

महाशक्ति की लीलापरिस्फार का चमत्कार देखने लगे। इसी तरह एक दो दिन निराहार रहे। भूखा रहना कब तक सहन हो सकता है ! अकस्मात् एक मुसलमान गोजर वहां से आ निकला और श्रीमान् जी को पूर्ण निर्भय रूप से आनन्द में देख कर आश्चर्य में पड़ा। विचार किया कि कोई सामान्य मनुष्य होता तो न तो इस घोर भयानक स्थान पर रहने का साहस करता और न ही यहां के हिसंक जीवों के उपद्रव से सुरक्षित रहता। श्रद्धा से उसका सिर स्वामी जी के चरणों पर झुका। पहले कुछ देर इस भीषण वन की घोर कठिनाईयों और महा

भयानक वनजीवों की वार्तायें बता – बता कर उन को ग्राम ही में जनपद से अलग थलग रहने की प्रार्थना करता रहा। पर श्रीमान् जी ने एक न मानी। जिस पर उस भलेमान्स ने घर से हर दिन कुछ खाने की चीजें भेजने की आज्ञा मांगी पर श्रीमान् जी को कब उसे इस प्रकार खेद देना स्वीकार होता। हार कर अंत में गोजर भगत ने देखा कि उसकी गायें पहले से अधिक दूध देने लगी हैं इस से उस की श्रद्धा और भी बढ़ गई और उसका हृदय स्वामी जी की भक्ति से भर गया।

धीरे–धीरे उस गोजर के द्वारा श्रीमान् जी के प्रभाव की सूचना इधर उधर फैली। यहां तक कि पण्डित प्रसाद जुव भी जिन्होंने पहले स्वामी जी का इस भयंकर स्थान में ठहरना असम्भव समझा था यहां आये। एक छोटी सी कुटिया बनवाई और वहां अन्न पानी भेजने का भी प्रबन्ध किया। श्री स्वामी जी बहुत दिनों तक इस घोर वन में अत्यंत कुशलता से रहे। आठों पहर स्वस्वरूप विमर्श के आनन्द में मग्न रहते।

अन्न इत्यादि का कभी ही सेवन करते। उन दिनों श्रीमान जी का मुख कमल अत्यन्त तेजस्वी हुआ। कई बार ऐसा हुआ कि शेर रीछ और सर्प उनके सामने आकर चुपके से लौटे। एक बार कुछ भक्तजन श्रीनगर से दर्शनों के लिए आये थें। उन्होंने देखा कि रात्रि के समय एक सिंह स्वामि जी को मस्तक नवाकर चला गया। बड़े – बड़े विष भरे सर्प कुटिया में घुमते रहते। भक्तों ने इसका संकेत इस श्लोक में दिया है।

कार्कोटाहेर्गहन भवने हिंस्रजीवै : परीते,
शाक्तस्फारातिशयविमलो जात संविद्विकासः
क्रुद्धा हिंस्रा गुरुवरधिया मस्तकैर्य्यं प्रणेमु
स्तं श्री विद्याधर गरुवरं स्वात्मरामं नमामि।।

यहां से चलकर श्री स्वामी जी अन्य रमणीक स्थानों में घूमते रहे। और स्वात्म विमर्श का आनन्द लेते रहे। जिस बस्ती में ठहरते जनता उसके दर्शनों के लिए आती रहती और धर्म्मसम्बन्धी व्याख्यानों से लाभ उठाती। कुछ समय इस प्रकार व्यतीत करके स्वामी जी

गोदावरी के पवित्र स्थान पर गए थे जो कश्मीर देश का एक तीर्थ है यहां श्रीमान् जी बस्ती में नहीं ठहरे परन्तु पर्वत के ऊपर घने वन में एक भयानक स्थान पर बैठे और बहुत समय तक स्वात्मविमर्श रूपी तप में मग्न रहे उनके पश्चात् बहुत अन्य ऐसे ही स्थानों में निवास किया। कभी – कभी श्रीनगर भी आते परन्तु अधिक समय वनों गुफाओं और पर्वतों की कन्दराओं में व्यतीत करते। जितना समय बस्ती में ठहरे वहां की जनता में धार्मिक जागृति उत्पन्न की और बहुत से पात्र पुरुषों को स्वात्मज्ञान के उपदेश से अनुगृहित किया। श्री स्वामी विद्याधर स्तुतिः में इसी प्रयोजन का यह श्लोक रचा गया :–

स्वानारण्या वटझर महीघ्रेश चीर्णव्रतोयो।
योग क्षेमी वितरणमति श्रिन्यानात्मज्ञानं।
दानं भूत्यै भवति जगतां शिक्षियंश्चविनीतां।
स्तं श्री विद्याधर गुरुवरं स्वात्मरामं नमामि।

श्रीमान् जी विशेष करके त्राल, शोपयान कोठसू, विजबाड़ा और तूलामूला में ठहरते रहे।

दिन भर दर्शनाभिलाषीयों का तान्ता लगा रहता तो भी स्वामी जी अधिक समय एकान्त में स्वात्मविचार में व्यतित करते, बस्तियों में अपने भक्तों के घेरों में रहते हुये भी उनका विचरण अपनी इच्छा के अनुसार हुई तो उन्हें रोकने का किसी का सामर्थ्य न था।

जब स्वामी जी श्रीनगर आते तो अपने प्रधान शिष्य डाक्टर सूर्यकण्ठ जी के घर पर निवास करते। श्री सूर्यकण्ठ जी ने अनथक गुरु सेवा के कारण स्वामी जी की विशेष कृपा प्राप्त की थी। आपकी तितिक्षा, धैर्य और शान्त स्वाभाव प्रशंसनीय है। आप देहान्त तक भी अपनी गुरु भ्रातामण्डली का शैव ग्रन्थ पढ़ा रहे और आश्रम के ट्रस्ट के प्रधान भी रहे।

श्री स्वामी जी को श्री खीरभवानी के पुण्य अस्थापन के प्रति विशेष प्रेम और श्रद्धा थी। आप कहते थे कि यहां का वातावरण अत्यन्त अहलादकारक और शान्ति दायक है। इसी लिये श्रीमान जी हर वर्ष ज्यादा अवसर के लिये यहां

ही ठहरते थे। आप की शिष्य मंडली ने आपके निवास के लिये पवित्रकुण्ड के पास ही श्री विश्वनाथ की दुकान के ऊपर एक कमरा बनवाया था। जहां स्वामी जी की पादुका स्थापित थी और उसकी नित्य पूजा और आरती हुआ करती थी।

श्री अमरनाथ गुफा में एकान्तवास

श्री स्वामी जी की घोरतपस्या और अनासक्त भाव के प्रभाव से दूर दूर से जनता उनके दर्शनों और वाक्यात्मृत से लाभ उठाने के लिए आने लगी उनके मुख कमल और मनोहर वाणी में कुछ ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि भक्तों की तृप्ति ही न होती थी और हर समय उनकी सभा में नर नारियों की भीड़ लगी रहती। इसी प्रकार कुछ समय व्यतित करके श्रीमान जी के हृदय में फिर किसी गुप्त स्थान में बैठने की दृढ़ वासना उत्पन्न हुई। और इस प्रायोजन से कुछ समय के लिए श्री अमरनाथ जी की गुफा

में बैठने का विचार किया। दो तीन सेवक साथ लिए और उस पुण्यतीर्थ की ओर चल पड़े :–

यस्या भूम्ना चकित चकितो भूदयं मर्त्यवर्गः
पादौ स्पृष्टुं द्रुतमुपययौ प्रावृणोच्चाश्रमं तत्।
नै तच्छर्मेत्यमर विवरं प्रापयः शैवधर्मा
तं श्री विद्याधर गुरुवरं स्वात्मं रामं नमामि।।

आषाढ़ पूर्णमासी 1972 विक्रमी को गुफा पर पहुँचे। केवल सत्तू का थैला कुछ चाय मिसरी, दियासलाईयों की डिबिया एक लोई और एक लोटा साथ था, सेवक दूसरे ही दिन लौटे और श्रीमान सावधान चित्त से वहां एकान्त में ठहरे और पूरे एक मास के लिये स्वात्म चिन्तन में मग्न रहे।

श्री अमरनाथ गुफा के चारों ओर बर्फ ही बर्फ है वृक्षों की तो कोई बात नहीं उस निरस्तपाद प्रान्त में झाड झकाड का भी पूर्ण अभाव है। जीव जन्तुओं का नाम तक नहीं। हां एक बात आश्चर्यजनक जरूर है। वह यह कि श्रावण पूर्णिमा के पुण्य दिवस पर जब यात्री लोग वहां

देश विदेशों से सपरिवार लिंग मूर्ति शंकर के हिमवंती आकारों के दर्शनों के लिए आते हैं तो वहां कतिपय कपोतों (कबूतरों) की जोड़ीयों के दर्शन भी होते हैं। कहा जाता है कि दुर्भाग्य वश जिनको वह दर्शन प्राप्त न हो उनकी यात्रा निष्फल समझी जाती है। अस्तु वहाँ का जलवायु अत्यन्त शीतल हैं। बैठने के लिए गुफा के बिना कोई स्थान नहीं। गुफा में भी बर्फ का पानी जगह – जगह पर टपकता रहता है। ऐसे ही जल – बिन्दुओं से शिवलिंग की हिमवंती मूर्ति एक नियत स्थान पर बढ़ती – बढ़ती प्रत्येक पूर्णिमा को हर मास पूर्ण हो जाती है। भोजन इत्यादि बनाने का कोई सामग्री साथ भी नहीं ले गये थे। हां सेवक कुछ कोयले वहां छोड़ गये थे। जिनसे कभी – कभी चाय बनाते थे।

ऐसे घोर विजन में निवास करना केवल ऐसे समाधिनिष्ट योगियों का काम है जिन्होंने निर्भयता तितिक्षा और सन्तोष की पराकाष्टा प्राप्त की हो। जिनको उदर पूर्ति की चिन्ता न सताती हो और न ही कठिन शीत से कदापि

आर्दित होते हूं। अर्थात् भगवद् भक्ति के अनुसार 'शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः संग विवर्जितः' ऐसी परम पदवी प्राप्त की हो और निरन्तर विमर्शघन बनकर पंच महाभौतिक शरीर के आभास मात्र से उत्तीर्ण दशा का निर्गल चर्वण करते हो।

इसी प्रेकार श्री स्वामी जी चारों ओर बर्फ से घिरी और अविछन्न जल बिन्दुओं से भरी गुफा में श्री अमरेश्वर लिग के बनने और चन्द्रमा के साथ –साथ उसके बढ़ने और फिर घटने का चमत्कार देखकर स्वामि जी ने इस सिद्धान्त का पूर्णरूप से अनुभव किया कि चितरस ही आशानीभूत होकर विविधप्रपन्स का रूप धारण करता है। और अन्त में चितरस शेष रह जाता है। इस निरुत्तर दशा का परिचय प्रतिभाशाली शिष्यों ने गुरुस्तुति के इस श्लोक में दिया हैः–

आश्यानोयं चितिरस मयः सर्वतो भाववग
नाना रूपं श्रयति द्रवतामागतोऽव्यक्ततां च
इत्यानीतः स्वगृहमऽमरेशेनयः शिक्षिणार्थं
त श्री विद्याधर गुरुवरं स्वात्म रामं नमामि।।

ऐसी परम श्लाध्य अवस्था में आपका जाज्वल्यमान मुखकमल तो देखने से ही सम्बन्ध रखता था। श्रावण पूर्णिमासी को यात्री गुफा में पहुँचे तो वह उनके अलौकिक दर्शन से मानो साक्षात् शिव के दर्शनों का ही लाभ प्राप्त कर गये, और श्रीमान् जी के परम साहस, दैवविश्वास, निरपेक्षता और निर्भयता को देखकर चकित रह गये और उनके मतस्क स्वामी जी के चरणार्बिन्दों पर श्रद्धा से बारंबार झुक गये। यात्रा के साथ अपके कुछ सेवक भी थे जिन के साथ आप लौट आये।

श्री अमर नाथ गुफा से लौटकर 'नवदल' तीर्थ से होते हुए त्राल पहुँचे जहां थोडे दिन ठहर कर श्रीनगर आये और पण्डित आनन्द जुव हाशिया के घर पर जो बड़े भक्त और दानशील थे ठहरे। जैसा ऊपर लिखा गया है श्री अमरनाथ गुफा में एकान्त सेवन और विमर्श परायण रहने से आप अलौकिक तेजस्वी बने हुए थे और आप के हृदय में परम शान्ति ने निवास किया था। यहां अर्थात् हाशिया वालों

के उसी शान्ति के पुरःसर दिन भी शैवसिद्दान्त की चर्चा रहती। बहुत भक्तजन स्वामी जी के व्याख्यानों से लाभ उठाते और कई सज्जन शैवशास्त्रों का अध्ययन भी करते।

पवित्र स्थानो में भ्रमण

कुछ समय के पश्चात् श्री स्वामी जी शोपयाँ गये और वहां कपाल मोचन के पुण्य तीर्थ पर ठहरे। यहां पवित्र कुण्ड का 'पाजन' (शुद्ध) कराया और शोपयान की हिन्दु जनता को प्रेरणा की कि वह इस धर्मस्थाान का सुधार करें। इसी वर्ष स्वामी जी अपने कुच्छ सेवकों के साथ 'कौंसर नाग गये और विष्णु पाद की यात्रा की।

दूसरे वर्ष श्रीमान जी 'मंज़ग्राम' पधारें और वहां बस्ती से ऊपर वन की ओर श्री राज्ञा देवी के पवित्र कुण्ड पर ठहरे इस पुण्य तीर्थ की महानता और दृश्य ने श्रीमान जी के ह्रदय को बहुत आकर्षित किया। उन्होंने ने आस

पास की हिन्दू जनता को वहां पर धर्मशाला बनवाने की प्रेरर्णा की। जिस के फलस्वरूप उन्होंने एकत्र होकर धर्मशाला बनवाई और कुण्ड का सुधार किया और एक यज्ञ रचाया। कई लौकिक दृष्टि वाले पुरूषों के चित्तों में यह शंका उत्पन्न हुई कि स्वामी जी की धर्मशाला में रहकर स्वयं मठधारी बनने की इच्छा है परन्तु श्रीमान् जैसे त्याग मूर्ति और स्वच्छन्द स्वरूप के लिए एक ही स्थान पर रहने का बंधन असह्य और किसी नियम के पराधीन रहना असम्भव था। उन्होंने केवल परोपकार निमित्त और तीर्थ सुधार विचार से प्रेरित होकर ही वहां धर्मशाला संपूर्ण कराई और उसकी चाबियां परोहित को सौंप कर स्वयं वहां से चले आये।

मौनव्रत और महा यज्ञ

वर्षभर 'कौठसू शोपयान' बिजवाडा, अनन्त नाग इत्यादि स्थानों पर निवास किया। कुछ समय श्रीनगर में ठहरे और फिर त्राल पधारें

जहां पूरे एक वर्ष के लिए मौनव्रत धारण किया इस सारे समय में स्वामीजी केवल दूध का सेवन करते रहे और निरन्तर विमर्श परायण रहे। यहां एक सुशील भक्तिमती विधवा तारावती जी श्रीमान् जी की सेवा करती रही। पूरा वर्ष व्यतीत होने पर आश्विन (अस्सूज) मास के शुल्कपक्ष की प्रतिपदा को स्वामी जी ने व्रत खोला। उस दिन वहां एक भारी यज्ञ रचाया गया। श्रीनगर से श्रीमान् जी के शिष्यगण और त्राल ग्राम निवासी भक्तजन त्राल में एकत्र हुए और अन्य ग्रामों से भी बहुत सारे लोगों ने आकर लाभ उठाया।

त्राल से श्रीमान् जी सीधे श्रीनगर आये। कुछ समय बालगार्डन (काकसराय) में रहे और कूछ समय अपने प्रधान शिष्य श्री सूर्यकण्ठ जी (डाक्टर) के हां बैठे। यहाँ स्वामी जी निरन्तर अपने शिष्यों को शैवग्रंथ पढ़ाते रहे। फिर श्री क्षीरभवानी जी के पुण्यतीर्थ पर चले गयें जहाँ कुछ समय बड़े आनन्द से व्यतीत किया।

दूसरे वर्ष स्वामी जी 'क्षीरभवानी' अस्थापन से श्रीनगर आये और यहां से उन्होंने बारामूला के 'कूटी तीर्थ' और गोसाईटेंग' की यात्रा की उसके पश्चात त्राल गयें और वहां कुछ समय व्यतीत करके 'रत्नीपोरा' पधारे जहाँ आप ने अपने श्रेष्ठ शिष्य आबाल्य ब्रह्मचारी श्री महादेव काक जी के घर में शीतकाल का अधिक समय व्यतीत किया। श्री महादेव काक जी गुरुभक्त विमर्श शाली सत्पुरूष और अपने अनेक गुरु भाइयों के लिये पथदर्शक बने हुए थे। 'रत्नपोरा' से महात्मा जी श्रीनगर आये और कुछ समय हारी पर्वत पुखरीबल के पास एक कुटिया में रहे। उसके पश्चात् 'क्षीरभवानी' चले गये जहाँ से एक भक्तजन के साथ जालन्धर पधारे।

जालन्धर से लौटने पर श्रीमानजी फिर त्राल शोपयान इत्यादि स्थानों में घूमते रहे जिस के पश्चात् श्रीमान जी फिर त्राल शोपयान इत्यादि स्थानों में घूमते रहे जिस के पश्चात् श्रीनगर आकर रैनावारी की "थकपरी" में कुछ समय रहे। दिन भर जनता का ताँता लगा

रहता और भगवद्चर्चा होती रहती। एक दिन झील 'डल' की ओर जाना निश्चित हुआ था। पर स्वामी जी ने प्रातः काल ही को शहर आने की इच्छा प्रकट की। उनकी स्वतंत्र इच्छा को कौन रोकता, श्रीमान जी अपने कुछ शिष्यों के साथ नगर में श्री सूर्यकण्ठ जी डाक्टर के निवास पर आये, कुछ घण्टे व्यतीत होने पर ही शहर में भयानक उत्पात मचा, यह 31 आषाढ़ 1988 का दिन था।

अनेक तीर्थों की यात्रा

इसी वर्ष देश में उत्पात के कारण स्वामी जी ने खोनमूह में व्रत धारण किया, केवल भुन्ने हुये आलू और दूध का सेवन करते रहे। यहां से ही श्री हर्षेश्वर महदेव की यात्रा की और फिर श्रीनगर आकर अपने सेवकों के साथ श्री शारदा माई की यात्रा को गये। दूसरे वर्ष स्वामी जी अपने भक्त और सेवक श्री महादेव काक रत्नपोरा निवासी के साथ हरिद्वार यात्रा को गये और कुछ समय वहां गंगाजी के तट पर स्वात्म

विचार में व्यतित किया। दूसरे वर्ष स्वामी जी कुछ समय त्राल में ठहरे और फिर श्रीनगर में आकर डल झील में सोन लांक पर निवास किया जहां चारों और स्वच्छ वायु निर्मल जल और पद्म पुष्पों का आनन्द लेते रहे।

श्रीमान जी के श्रीनगर निवासी सेवकों की इच्छा थी कि स्वामी जी अधिक समय श्रीनगर में निवास करें ताकि उनको गुरु सेवा का अवसर मिले और सत्संग तथा अध्ययन का लाभ उठा सकें पर स्वामी के स्वातन्त्रय के सामाने परतन्त्र थे, तो भी उन्होंने श्रीमान जी के रहने और बैठने के लिए एक भक्तजन के द्वारा चिंक्राल मुहल्ला में एक मकान लिया और अब स्वामी जी जब कभी श्रीनगर आते तो वहां ही ठहरते। प्रातः काल से 12 बजे तक श्रीमान जी एकान्त में विमर्श तत्पर रहते। दिन भर भगवत् –कथा की चर्चा रहती और सायं काल के पश्चात् सेवकों को शैवग्रन्थ पढ़ाते और फिर आरती और पाठ होता। यहां से स्वामी जी ने अपने बहुत से सेवकों के साथ कश्मीर के

प्रसिद्ध तीर्थ श्री महादेव की यात्रा की। मार्ग के दुर्गम और कठिन होते हुये और शरीर के कुच्छ भारी होते हुये भी कुशलता पूर्वक महादेव की चोटी पर पहुँचे। उस समय आकाश पर चारों ओर मेघ छाये हुये थें। यात्री बहुत घबराये कि वर्षा अवश्य होने वाली है पर श्रीमान्जी ने सारे वस्त्र उतार कर उच्च स्वर में भैरवस्तोत्र से आरती की और पूर्ण विकास में आये। देखते – देखते मेघ हट गये और सूर्य भगवान का प्रकाश हुआ।

सामाजिक सुधार

इसके पश्चात् श्री स्वामी जी ने एक ऐतिहासिक काम किया। कश्मीरी ब्राह्मणों का एक अंग 'ल्यजि भट' कहलाता था। इस उपजाति की संख्या बहुत थोड़ी थी किसी आपातकाल में किसी अत्याचारी के अन्याय से परवश होकर उनको आचार के विरूद्ध कुछ व्यवहार करना पड़ा था जिस कारण से उनको और उनकी सन्तति परम्परा को सर्वकाल के

लिए भ्रष्ट समझा जाता था यद्यपि उस भीषण परिस्थिति के समाप्त होने पर वह ब्राह्मण जाति के नियमों के अनुकूल, व्यवहार फिर से करने लगे थे परन्तु शेष कशमिरी ब्राह्मण उनके साथ खानपान का व्यवहार नहीं रखते थे। स्वामी जी ने अपनी विशाल दृष्टि से देखा कि कितना अन्याय है कि जाति ने अपने एक अंग को स्वयं काट रखा है। यद्यपि उनके आचार विचार वहीं हैं जो शेष सबों के हैं उनकी जात और गोत्र भी उनके जैसे ही है। अपनी स्वाभाविक उदार दृष्टि से स्वामी जी को जाती के इन भाईयों के सम्बन्ध में व्यवहार अत्याचार ही प्रतीत हुआ। अतः इस भेदभाव को मिटाने का इस प्रकार प्रबन्ध किया कि पहले जनता में इस भेदभाव के अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध उत्साह से प्रचार किया। कई 'ल्यजि भट्ट' उनके सेवक बने फिर 'ब्रिजबिहारा' में ल्यजिभट्टों से एक महायज्ञ कराया जिस में शोपयान, बारामूला, तूलामूला, त्राल और ब्रिजबिहारा इत्यादि स्थानों से सब ल्यजिभट्ट

एकत्रित हुए। फिर श्रीनगर से और कश्मीरी पण्डित नेताओं को इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रित किया। सब उपस्थित जनों ने इस महायज्ञ पर ल्यजिभटों के हाथों से बनाया हुआ भोजन खाया और इस प्रकार यह निष्कारण भेदभाव सदा के लिए समाप्त हुआ श्रीमान जी का यह ऐतिहासिक कार्य महात्मा गान्धी के अछूत उद्धार के समान प्रशंसनीय है।

दूसरे वर्ष श्री स्वामी जी श्रीनगर से मंजगाम गये और बहुत दिनों वहीं भगवती के कुण्ड पर धर्मशाला में विमर्श परायण रहे फिर वहां से चलकर कुछ समय शोपयान में अपने सेवकों के वहां व्यतीत किया। वहां से त्राल चले आये जहां से फिर श्रीनगर आकर और कुछ समय वहां रहकर फिर कोठसू चले गये और वहां कुण्ड के किनारे कुछ समय व्यतित करके गणेशबल के पवित्र तीर्थ पर ठहरे। यहां उन्हें श्री महामाहेश्वयाचार्य वर श्री नागार्जुन रचित चित्तसन्तोष त्रिंशिका अकस्मात् मिली। इस बात

को वह श्रीगणपतिदेव का साक्षात्कार ही समझते थे। फिर वहां से विजय सप्तमी के उत्सव पर मार्तण्ड आये और वहां से श्री नगर पहुँचे।

शैवाश्रम का निर्माण

श्री स्वामी जी के सेवकों की बहुत समय से यह इच्छा थी कि वह श्रीनगर के किसी अच्छे स्थान पर आश्रम बनाये, जहाँ उन्हें नित्य आपस में मिलने अध्ययन और सत्संग का अवसर मिल सकें और यह श्रीमान् जी श्रीनगर में होते हुए आश्रम पर ही ठहरा करें। जब यह विचार स्वामी जी के सामने रखा गया तो उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि आश्रम बनना भी गृहस्थ में प्रवेश करने के समान है। गृहस्थी बनना नहीं चाहते और अपने स्वातन्त्रय में किसी प्रकार की बाधा डालना उनको स्वीकार नहीं। सेवक तीन वर्ष तक उनसे आश्रम बनाने की आज्ञा मांगते रहे परन्तु त्यागमूर्ति और वैराग्यशाली महात्मा सदा ही इसके विरूद्ध रहे। तीन वर्ष के पश्चात् स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना केवल इस विचार

पर स्वीकार की कि आश्रम केवल सेवकों के एकत्र होने और उन्हें सम्मिलित रखने के प्रयोजन से ही बन जाये परन्तु इस में स्वामी जी के स्वतन्त्र विचरण में किसी प्रकार की बाधा न हो।

श्रीमान जी की स्वीकृति मिलने पर करण नगर दीवानबाग में केवल स्वामी जी के सेवकों के द्रव्य से आश्रम बनाया गया जिसका नाम श्रीमान जी के शुभनाम पर " श्री विद्याधर शैवाश्रम " रखा गया। सं0 2003 वि0 में आश्रम में प्रवेश के अवसर पर एक यज्ञ रचाया गया और संध्या समय को नित्य पाठ आरती और उसके अनन्तर नित्य अध्ययन का प्रबंध किया गया, शनिवार की रात्रि को पूर्व से ही प्रचलित रीति के अनुसार सब भ्रातृगण आश्रम में एकत्रित होते और रात भर भजन और कीर्तन में मग्न रहते। यह कार्यक्रम अब तक चला आ रहा है और भगवान की अपार कृपा से आशा है सदा सर्वदा प्रचलित रहेगा।

अब श्री स्वामी जी का शरीर कुछ निर्बल सा होने लगा था और अधिक विचरण की इच्छा न थी। इस लिये 'त्राल' में अपने सेवक अमरचन्द जी के घर अथवा क्षीरभवानी के पावन तीर्थ पर सेवकों के बनाये हुये आश्रम पर ठहरते या तो श्रीनगर ही में अधिक समय आश्रम पर व्यतीत करते और सेवक मण्डली को धर्मोपदेशों से अनुगृहीत करते।

शरीर त्याग का पूर्व परिचय

सं0 2006 के श्रावण में श्री स्वामी जी करणनगर आश्रम पर थे। एक रात्रि को अकस्मात् तीन शिष्यों के सामने यह विचार प्रकट किया "शरीर की स्थिरता पर कोई विश्वास नहीं, कौन जाने यह देह कब छूटेगा। इस लिये तुम को पहले से ही विदित होना चाहिये कि हमारे देहावसान पर तुम लोगों का क्या कर्तव्य होगा, हमें यह मनोज्ञ प्रतीत नहीं होता कि भक्तजन हमारे मृतपिण्ड को नगर की गलियों और कूचों में से घुमाने का कष्ट

उठायें, (जीवन भर उनमें लोकैष्णा कभी थी नहीं यह तो भगवान की अपार कृपा रही तो मृत्यु के पश्चात् कहां से वह क्षुद्र वासना आ जाती। देह के साथ उनका जीते जी भी कोई सम्बन्ध न था मरने पर कैसे होता) मृतक को पास के शमशान पर ले जाकर यथायोग्य दाह क्रिया करना ही उचित है। शास्त्ररीति के अनुसार निर्वाण क्रिया का पूर्ण रूप से करना आवश्यक समझें। जो परमार्थिक पथ की सन्तति का कर्तव्य है। प्रेत क्रिया तो शरीर सम्बन्धी सन्तान गोविन्द जी का धर्म है। बारहवें दिन शिष्यगण एक वेद हवन रचायें। निवार्ण और यज्ञ उन की ओर से पर्याप्त होगा। यह भाषण सुनकर सुनने वाले तीन सेवक अत्यन्त व्यथित हुये। नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी, मुख से कुछ बोल न सके, भगवान ने भक्तों की यह दशा देखकर उनको सान्त्वना देते हुये कहा "हमारा यह प्रयोजन नहीं जो तुम लोग समझे" हमारा प्रयोजन केवल इतना है कि यह संसार अनित्य हैं। देह किसका नित्य रहा जो हमारा

रहेगा। कभी न कभी अन्त होगा ही। उस समय पर आप का क्या कर्तव्य होगा उस से आप लोगों को परिचित कराना हमारा कर्तव्य है जो इस समय हम निभा रहे हैं। इससे अधिक कुछ नहीं। चिन्ता का अभी कोई कारण नहीं इत्यादि मधुर–मधुर बातें करके उनको सन्तुष्ट किया।

उसी वर्ष अश्विन मास के गुरुपर्व के पश्चात् श्रीमान् जी त्राल पधारे और कार्तिक मास में वहीं रहे। यूं तो पहले स्वामी जी के श्रीनगर वासी सेवकों को उन्हें गाऊं से श्रीनगर लाने के लिये कई बार जाना पड़ता परन्तु अब की बार आप पूर्व सूचना दिये अपनी परम भक्तिनी श्रीमती तारावती देवी से कहा "हमारे कारण तुम्हें बड़ा कष्ट मिला है। हमें क्षमा करना। तुम को अब शीघ्र ही श्रीनगर आना होगा। इतना स्मरण रखना कि अपना शेष जन्म उसी प्रकार सती भाव से व्यतीत करना जिस प्रकार अब तक करती रही हो। देवी जी

के ह्दय में श्रीमान जी के शब्द बानों की तरह चुभ गये और निरर्गल आसंओं के रूप में नेत्रों से फूट पड़े पर वह इन शब्दों के तात्पर्य को सम्यक् रूप से न समझ सकी।

श्रीनगर पहुँचकर एक भक्तजन ने पूछा कि श्रीमान जी अब के अकस्मात् ही श्रीनगर चले आये तो हंस कर उत्तर दिया कि हम नहीं चाहते थे कि यह श्रीनगर के सेवक व्याकुल होकर दौड़ते फिरे। तो भी श्रीमान जी के प्रयोजन को कोई न समझा। तीसरे दिन बैठे–बैठे उपस्थित जनों से हंसते हुए कहा "यह आश्रम भी एक उपाधि ही हैं। हम शीध्र ही इसे वहां ष्मुशान भूमि में परिणत देखना चाहते हैं।" दूसरे दिन एक सेवक को पूजा की कोठरी में बुलाकर कहा "गुरु के देहान्त के पश्चात् सेवक उनकी पादुका इसी प्रकार इस जगह रखना" इस प्रकार स्वामी जी ने अपने शिवधाम गमन के कई संकेत दिये परन्तु कोई विश्वास के साथ यह न जान सका कि श्रीमान जी का क्या प्रयोजन है और क्या होने वाला हैं।

शिवलोक प्रस्तान

मार्गशीर्ष अमावसी रविवार का दिन था। श्रीमान जी ने 12 बजे भोजन किया। यह पहला अवसर था जब स्वामी जी ने थाली में डाले हुये चावल सब खाये, नहीं तो थाली में अवश्य कुछ शेष छोडते थे। भोजन समाप्त करके कहने लगे आज सारे के सारे चावल खाये हैं और पूर्ण तृप्ति हुई हैं। दिन भर सेवक और कुछ अन्य भक्तजन प्रतिदिन की भांति आश्रम पर उपस्थित थें। सत्संग और भगवत्कथा होती रही। शरीर में कोई व्याधि प्रकट न थी हां कुछ वर्षों से "रक्तचाप" के कारण से डाक्टरों ने तम्बाकू न पीने की प्रार्थना की थी। इस दिन बातों बातों में हंसते हंसते एक सेवक से कहा कि आज हुक्का पिलाओगे तो तुम्हारी सौगंध है कि कल से हम कभी हुक्का न मागेंगे न पीयेंगे और न ही हुक्के की ओर देखेंगे। सेवकों ने समझा यदि एक बार हुक्का पीलिया तो क्या हानि है जो भविष्य में कदापि भी इस की ओर न देखेंगे और व्याधि सर्वदा के लिये छूटे और उनका स्वास्थ्य बना

रहे। हंसी खुशी एक सेवक ने उठकर हुक्का पिलाया। पीकर स्वामी जी बोले 'बस अब कभी न पियेंगे।'

संध्या समय के पश्चात् सेवक घरों को लौटे। केवल तीन मूर्ति रात को आश्रम पर रहने के लिये वहीं ठहरे। रात के साढ़े दस बजे तक श्रीमान् जी सेवकों को अपने गृहस्थ त्याग के पश्चात् की कई वार्तायें सुनाते रहे और यह भी कहा "संसार का रंग बदल रहा है। अधर्म की वृद्धि हो रही है। अब इस शरीर को त्याग देना ही उचित है ताकि तुम्हारे हाथ पाऊं हमारे काम आयें"। फिर एक सेवक से कहा "नक्षत्र पत्री देखकर आने वाले तीन दिनों के महूरत बताओ।" आप लघुशंका के लिए नीचे आगन में चले गये। लौटने पर सेवक ने मूहरत बता दिये। स्वामी जी ने हंसते हुये "अच्छा" कहकर हाथ और पैर तौलिया से पूंछ लिये और "शिव शिव शिव" जैसे उनका अभ्यास था कहते हुये आसन पर विराजमान हुये। थोडे ही समय के पश्चात् फिर उठे और कमरे के दरवाजे की ओर बढ़े

और फिर अकस्मात् वहीं बैठगये। सेवक घबरा गये देखा कि श्रीमान जी का शरीर शिथिल पड़ रहा है। उन्हें आसन पर लिटाया गया। शरीर की अवस्था कुछ अच्छी दिखाई न दी। उसी समय श्री सूर्यकण्ठ जी डाक्टर भी आये। औषधि पिलाई गई। परन्तु रात्रि भर निर्बलता बढ़ती गई। शरीर में कोई सुध बुध न रहीं और न मुखारविन्द से कोई शब्द निकल सका।

दूसरे दिन प्रातः काल को ही सब नगर निवासी सेवक एकत्रित हुये। निपुण से निपुण वैद्य बुलाये गये। कई प्रकार की औषधियां पिलाई गई परन्तु सब निष्फल हुई। पूरे ढ़ाई दिन शरीर की यही अवस्था रही। ऐसा प्रतीत होता था कि श्रीमान योगनिद्रा का आनंद ले रहे हैं। मुख कमल अत्यन्त जाज्वल्यमान और नेत्र परिमौलित केवल प्राणों का श्वासोश्वास धीरे–धीरे चल रहा था। इस सारे समय में निरगल भजन और कीर्तन होता रहा। दूर–दूर गाँव में भी यह सूचना फैली, और शिष्य जहां भी जो था श्रीनगर चले आये। दूसरे दिन भजन कीर्तन के अतिरिक्त

स्वामी जी के परम अभीष्ट श्री महा माहेश्वराचार्य वर श्री नागार्जुन रचित 'चितसन्तोष त्रिंशिका' का कीर्तण हुआ। आश्रम नर नारियों से भरा पड़ा था। कहीं तिल धरने को जगह न थी। अलौकिक शान्ति का समां बंधा, श्रोतागण निश्चेष्ट श्रवणमग्न रहे, ऐसा प्रतीत होता था कि महात्मा स्वयं सुन रहे हैं। संध्या समय को स्वामी जी की धर्मपत्नी 30 वर्ष के विरह के पश्चात अपने पतिदेव के अन्तिम दर्शनों के लिए आ गई और उस के पश्चात् एक और सेवक भगवान दास पहुँचा। ऐसा प्रतीत होता था कि वही एक शिष्य तब तक नहीं पहुँचा था और उसी की प्रतीक्षा में प्राण धारण किये हुये हैं। उसी रात्रि को प्रातः काल तीन बजे सेवकों और उपस्थित सज्जनों ने प्राण छूटने के चिह्न देख लिए। शीघ्र धूप दीप लेकर आरती आरम्भ की। श्री अभिनव गुप्त जी महाराज कृत भैरवस्तोत्र बडे भाव और उत्साह के साथ गाया। नेत्रों से जल धारा वह रही थी। शरीर पुल्लायमान थे। प्रेम और श्रद्धा से निर्वानोन्मुख श्री व्यक्ति पर पुष्प बरसाये गये

और पराकाष्टा के अनुराग से सत्गुरु महाराज के परम–पावक चरण कमलों की परार्भक्ति का परिचय विविध प्रकारों से दिया गया। जूं ही आरती समाप्त हुई श्री स्वामी जी ने नेत्र कमल खोले और आन की आन में प्राणों की गति निस्पन्द हुई। उस समय श्रीमान जी की आयु 64 वर्ष से कुछ अधिक थीः–

भूयः स्यात्प्रतिमेलनं प्रतिभुवः सूत्रं शिवस्यान्तिमम्।
सम्यग्योप्यवधार्य शाश्वत पदं शैवं सहस्यामले।।
बाणद्वयभ्रशरे समेंऽपिच तृती यस्यां निशान्ते ययौ।
श्री विद्याधर स्वामि दैशकमर्णिभूयादद्य ध्वंसकृत्।।

उसके अनन्तर प्रातः काल को श्री स्वामी जी के शिवलोकगमन की सूचना सारे नगर में फैली नर नारी हजारों की संख्या में आश्रम पर एकत्रित हुये श्रीमान जी के शरीर सम्बन्धी परिवार

भी आया और विमान सजाने का प्रबन्ध आरम्भ हुआ। अन्तिम क्रिया के पश्चात् श्रीमान जी के शव का अन्तिम स्नान किया गया। उस समय जनता चारों ओर से टूट पड़ी। हर कोई चरणामृत और दर्शन का अभिलाषी था, "शिवाय नमः उों" की निरगल ध्वनि ने साक्षात् शिवलोक का समां बांधाः। आरती के पश्चात् डेढ़ बजे स्वामी जी की अर्थी श्मशान भूमि की ओर ले जायी गयी। कंधा देने के लिए भक्तों की स्पर्धा का दृश्य अलौकिक भक्ति प्रेम और उत्साह का प्रमाण था। विमान उत्तम रूप से सजाया गया था। सब ओर भजन और कीर्तन हो रहे थें, बाजे बज रहे थे 'पुरोहित मण्डली ऊंचे स्वरों में 'महिम्नास्तोत्र 'भैरवस्तोत्र' इत्यादि का गायन कर रहे थे। सब ओर से फूलों की वर्षा हो रहीं थी, स्वामी जी की शिष्य मण्ड़ली आगे–आगे नंगे सिर ओर नगें पैर अपने पूज्य दैशिक नाथ के विरह में व्याकुल और व्यथित अपनी श्रद्धा और गुरु भक्ति प्रकट कर रही थे। दिन के तीन बजे विमान हजारों नर नारियों के सहित

शमशान भूमि पर पहुँचा और विधिवत् निर्वान क्रिया आरम्भ हुई। उस समय तक भी जनता दर्शनों के लिए उमड़ी चली आ रही थी। निर्वाण क्रिया समाप्त होने पर आठ बजे श्रीमान जी के पुण्य देह को अग्नि देव के अर्पण किया गया। उस समय चारां ओर से स्वामी जी के सेवकों और भक्तजनों ने चिता पर फूलों की वर्षा की और चन्दन अगरबत्ती इत्यादि सुगन्धित पदार्थ डाली। जयकारों की ध्वनियों से आकाश गूंज उठा। अग्निदेव खिल–खिल हंसते हुये भासमान थे सेवक "ऋत्विज 'अग्ने नय सुपथाराये अस्मत् विश्वानि.... इत्यादि श्रुतियां प्रेम और शान्ति से परिपूरित हुआ। जब जनपद ने देखा कि उत्तम खरूप व्यक्ति का शव पूर्णतया भस्म होकर शिवमय हुआ तो सबों ने दूधगंगा में तर्पण किया और स्वामी जी की गुणवर्णना और पारमार्थिक उन्नति की चर्चा करते हुये घरों को लौटे।

पंचमी के दिन अस्थि–संचय क्रिया की गयी। अस्थियों को श्मशान भूमि से बड़े उत्साह

ओर शोभा के साथ लाया गया और सत्थू में श्रीमान जी के निवास स्थान पर रखा गया। जहां से कुछ समय के पश्चात श्रीमान जी के कुछ सेवकों ने उन्हें हरिद्वार लेकर गंगाजी की प्रवाह धारा में शास्त्रानुसार अर्पण किया।

श्री स्वामी जी के मोक्षधाम गमन के पश्चात् पूरे 11 दिन तक सब शिष्य और भक्तजन आश्रम पर एकत्रित होते रहे और भाग्यशाली महात्मा की महानता और गुणों का स्मरण और वर्णन करते रहे श्रीमान जी के चित्र और पादुका बड़ी शोभा और श्रद्धा के साथ स्थापित किये गये। 11 दिन पण्ड़ित शिरोमणि भक्तरत्न श्री नाथ काक कल्ला शास्त्री के मुखार्विन्द से वासिष्ठ में से 'परा पूजा' इत्यादि की अमृत कथा होती रही। संध्या समय प्रतिदिन गुरुस्तुति, कीर्तण और आरती होती रही। दसवें दिन सब शिष्य मण्ड़ली ने वपन (मण्डन) क्रिया की, बारहवें दिन आश्रम पर एक महायज्ञ रचाया गया और हजारों नर नारियों में प्रसाद बांटा गया।

उसी दिन संध्या समय के पश्चात् आश्रम पर स्वामी जी की शिष्य मण्डली की एक विशेष सभा हुई। जिस में नगर और गाँव के सब शिष्य उपस्थित थे। श्रीमान जी के गुण कीर्तनगान के पश्चात् भविष्य में आश्रम के प्रचलित रखने के सम्बंध में विचार किया गया और सर्व सम्मति से नव सदस्यों की मण्ड़ली (ट्रस्ट) नियत हुई जिसे यह अधिकार दिया गया कि वह आश्रम पर नित्य पूजा, पाठ, आरती, आश्रम की देखभाल और अपने पूज्य गुरु महाराज के आदर्श को प्रचलित रखने का प्रबंध करे।

(विस्थापन से पहले) यह मण्ड़ली आश्रम पर हर प्रकार का प्रबंध करती थी। आश्रम पर नित्य पूजा पाठ और आरती होती थी, शैवग्रंथों का अध्ययन होता था और जन्म दिन तथा वार्षिक यज्ञ उत्साह के साथ मनाये जाते थे। जिन में हजारों नर नारियाँ एकत्र होकर श्रीमान जी की पुण्यस्मृति में अपनी श्रद्धा प्रकट करते थे। इसके अतिरिक्त शिवचतुर्दशी, शिवरात्रि, होरा अष्टमी नवरात्रि, श्री अभिनवगुप्त दिवस

उत्सव भी मनाये जाते थे और हर शनिवार की रात्रि को भजन और कीर्तन होता था। (विस्थाप के पश्चात यह कार्य श्री स्वामी विद्याधर स्वामी महादेव आश्रम जम्मू में होता है।)

आदर्श जीवन

श्री स्वामी जी ने संसार में एक आदर्श जीवन व्यतीत किया। बाल्यावस्था से अन्तिम समय तक उनका आचरण श्लाध्य आस्पद और प्रशंस्नीय रहा। विद्याप्राप्ति में उन्होंने काष्टा की निपुणता को प्राप्त करके अपने को प्रकट किया। गृहस्थ में रहकर उन्होंने योग्य नियमों के पालन के साथ–साथ अत्यन्त निरासक्त भाव दिखाया और गृहस्थ के पश्चात् भी अभेद भक्ति आत्मविश्वास, पूर्ण वैराग्य निर्लोभता और असंग भाव का परिचय दिया।

श्रीमान जी केवल विद्या के भण्ड़ार और अद्वैत सिद्धान्त की खान ही न थे अपितु पूर्णरूप से क्रिया भूषण और अनुभव शाली भी थे।

श्रोत्रिय और ब्रह्मानिष्ठ दोनों थे। निरन्तर स्वरूप विचार और स्वात्म विमर्श के कारण उन में अत्यन्त शान्त स्वभाव, आकर्षण शक्ति और अलौकिक तेज उत्पन्न हुआ था, अभेद भाव के तो वह मूर्तिमान पिण्ड थे और सहनशीलता उनमें उत्तम रूप से विद्यमान थी। उनके निश्चय में दृढता उनमें उत्तम रूप से विद्यमान थी। उनकी कष्ट साध्य तपस्या योग और उत्साह प्रकट ही हैं। आहार अत्यन्त साधारण था, पचीस वर्ष वह एकाहारी रहे। साधारण वस्त्र पहनते थे। किसी भी चेष्टा से साधुपना प्रकट करने और जनता में अपना मान बढ़ाने के कभी अभिलाषी न थे। दीन दु:खियों की सहायता यथा सामर्थ करने का अवसर कभी हाथ से नहीं जाने देते थें। बहुत बार ऐसा हुआ कि किसी नंगे साधु को देखकर अपने वस्त्र उतार कर दे दिये। किसी कुलीन गृहस्थी की शोचनीय दशा देखकर गुप्त रूप से ही सहायता की ज़िस का पता केवल ईश्वर और उस को रहा। आपने पट्टू पहिना और पशमीना, नग्न साधु

अथवा गृहस्थी को भेंट किया। भक्तजन उन के सामने नाना प्रकार की वस्तुओं का उपहार रखते तो वह उसी समय उपस्थित जनों में बांट दिये जाते। एक पूर्ण महात्मा का मुख्य लक्ष्ण कामिनी और कांचन पर विजयी होना बतलाया गया है। श्री स्वामी जी में यह दोनों गुण उत्तम रूप से विद्यमान थे, कामजित होना तो पूर्ण यौवन में ही एक परम सुन्दरी सुशीला भार्या के होते हुए गृहस्थ त्याग करने से ही स्पष्ट है। त्याग के पश्चात् अन्त समय तक अपनी धर्म पत्नी को कभी देखा ही नहीं। सब स्त्रियों को मातृशक्ति समझ कर ही पूजते रहे। स्वामी जी का कंचनजित होना इस बात से सिद्ध है कि त्याग के पश्चात् रूपये पैसे को कदापि नहीं छुआ। कभी किसी से धन नहीं मांगा, कई भक्तजन उनके चरणों में रूपये रख देते, परन्तु स्वामी जी कभी स्वीकार न करते। तूला–मूला में एक सेठ नें रूपयों की थैली भेंट की परन्तु श्रीमान जी ने हाथ लगाये बिना लौटा दी। श्री अमरनाथ गुफा में मास भर रहे तो एक अंग्रेज

यात्री ने उनकी विजन में एकाकी रह कर समय बिताते देखकर कुछ सावरण भेंट कियें पर श्रीमान जी ने सब के सब अंग्रेज के सेवकों को दे दिये।

वैराग्य तो श्रीमान जी के जीवन की एक–एक चेष्टा से प्रकट है। अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री शम्भूनाथ के मृत्यु की सूचना मिली तो श्रीमान जी के मुख्यकमल से मानसिक विकार लेशमात्र भी प्रकट न हुआ। सामने बैठे हुई जनता की ओर देखा और हंस पड़े। पूर्ण स्वात्मज्ञानी होते हुये भी स्वामी जी शौच नित्यकर्म और लौकिक आचार पर कटिबद्ध रहे। शैवमत के अतिरिक्त वेदान्त और दूसरी सम्प्रदायों के अनुयायीयों का वह बड़ा मान करते थें और उनके सिद्धान्तों की कभी निन्दा नहीं करते थे। वह इस भेद को केवल प्रक्रिया भेद ही समझते थे।

अद्वैत निश्चय ने श्री स्वामि जी के ह्रदय में पूर्ण निर्भयता उत्पन्न की थी जभी श्रीमान

जी भयानक वनों और कठिन गुफाओं में एकांत वास का साहस करते रहे। कार्कूट नाग में शेर कुटिया में आते रीछ सामने से चलते सर्प चारों और घूमते। मंजगाम में रीछ सेबों के वृक्ष पर था नीचे स्वामी जी गिरते हूए सेब एकत्र करने लगे। रीछ तब तक वृक्ष पर ही रहा जब तक स्वामी जी कुटिया में लौट गये, कमला वन में रात को सोये थे प्रातः पहना हुआ वस्त्र झाड़ा तो एक लम्बा सांप नीचे गिरा। श्रीमान जी ने हंस कर कहा "रात को हमारे साथ बड़े आनन्द से सोता रहा"। एक स्थान में रीछनी अपने सोए हुये बच्चे को बड़े क्रोध और वेग में ढूँढती हुई सामने से निकली। परन्तु स्वामी जी सावधान बैठे रहे। परीमहल जैसे भयानक स्थान पर जहाँ मनुष्य दिन को भी भयभीत होता है स्वामी जी कई दिन लम्बी – लम्बी घास में जहाँ विष भरे सर्प पग – पग पर फिरते है अकेले निर्भय होकर बैठे। ऐसी कितनी ही घटनायें हैं जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं

स्वामी जी ने पूर्ण क्रियात्मक रूप से अद्वैत निश्चयात्मक बुद्धि प्राप्त की थी।

श्री स्वामी जी के व्यक्तित्व में उद्योग उत्तम रूप से विद्यमान था। जब कभी हृत् – विकास की किसी साधना का विचार आया तो उस को पूर्ण करने में कभी आलस्य या प्रमाद न होने दिया। दुर्गम – स्थानों में जाने और वहां एकान्त में ठहरने से कभी झिझके नहीं। उनका सदा कहना था कि प्रारब्ध उद्योग से बनता हैं। प्रारब्ध का सहारा व्यवहारों में उचित हो तो– पर परमार्थ सिद्धि के लिए 'उद्योमो भैरव ' – उद्योग ही उत्तम उपाय हैं। वह जीव भाव रूपी संकोच और देह अभिमान की निवृति के लिए विचार और विमर्श रूपी उद्यम ही को साधना मानते थे :–

क्रीडाशीलो वलित स्वतनुश्चेत्यसंकोचधर्मा
संसारी स्याच्छिवइत्युदितं शक्तिसूत्रेषू सम्यक्
तत्रोपायं स्वकरमविददुद्यमो भैरवो यस्तं
श्री विद्याधर गुरुवरं स्वात्मारामं नमामि।।

श्री स्वामी जी को विशेषतः ऐसे स्थानों से प्रेम था जहाँ चित् – विकास और स्वात्म विमर्श के लिये शुद्ध शान्त स्वच्छ और मनोहर वातावरण के रूप में योग्य सामग्री उपस्थित होती। इसी कारण से वह गगनस्पर्श पर्वतों बहते हुये झरनों, लहलाते हुए खेतों, घने वृक्षों, सुगन्धित वाटिकाओं, गिरती हुई जलधाराओं, सुन्दर पक्षियों के मनोहर चहचहों और सुरेले गीतों से भरपूर स्थानों में बैठकर अलौकिक दृश्य और दिव्य लीलाओं के चमत्कार से आनन्दित रहते।

श्रीमान जी को गायन सुनने से भी अत्यन्त प्रेम था। सन्तूर पर सूफियाना गायन सुनने से विशेष लगाव रखते थे। इस कारण से पं० शामलाल कुटवाल पर जो श्रीमान जी के भगत थे और उन्हें संतूर पर गायन सुनाया करते थे, बड़े प्रसन्न थे। फारसी भाषा से अनभिज्ञ तो थे पर बुद्धि कौशल ऐसा उन्नत था कि सूफियाना तर्ज से हाफिज की गजलें सुनते –सुनते उनके जिह्याग्र अर्थानुसन्धान सहित स्थिर हो गई थी

जहां तक की किसी की सहायता के बिना औरों को सुनाते और समझा सकते थे।

जब गायन सभा लग जाती तो श्रीमान जी आप भी साथ – साथ गाते जाते और अत्यन्त आनन्द अनुभव कर लेते। कई रातें गायन में ही व्यतीत करते और बड़े हर्ष के साथ इसके तात्विक चमत्कार का चर्वणा कर लेते।

श्री स्वामी जी जहां निवास करते, दिन के 12 बजे तक एकान्त में बैठ कर विमर्श तत्पर रहते। भोजन करके कुछ समय लेटे रहते और फिर संध्या समय तक भगवतचचर्चा रहती, रात को देर तक भजन ओर कीर्तन होता।

श्रीमान जी अनजान पुरूषों से भी प्रेम और विकसित मुख से मिलते और बोलते, उनकी सभा में हर किसी के साथ समभाव का बर्ताव होता था, कोई धर्म संबन्धी प्रश्न करता तो बड़ी प्रसन्नता और विशालता के साथ उत्तर देकर उसे संतुष्ट करते, छोटे बालकों और बालिकाओं से इस तरह मिलते और बोलते

जैसे वह भी स्वयं बालक ही हैं। वह कभी यह नहीं चाहते थे कि जनता उनका सम्मान करे और उनके सामने माथा रगड़ती रहे। किन्तु उनके व्यक्तित्व में यह विचार न रखने वालों और वाद – विवाद और परीक्षा के प्रयोजन से आये हुये लोगो के सिर स्वतः सिद्ध उनके सामने झुक जाते और सदुपदेश से मन में शान्ति अनुभव करते।

जब श्रीमान जी अपनी शिष्यमण्डली में व्याख्यान करते तो ऐसा प्रतीत होता कि वाग् – लता पूर्ण रूप से प्रफुल्लित है उनके विकसित मुखकमल, निरर्गल वैखरी, कण्ठ के माधुर्य, शब्दों की गंभीरता और विद्या के बाहुमूल्य से पाठकों में अत्यन्त आनन्द और सन्तोष उत्पन्न होता।

शैवाम्नाय प्रवचन रति शंकरो योहिदेव :
पीयूषाँशुरिव मुख रुचाऽहलादच्छिष्य संघान्
दीप्त्या भास्वनिव हृदयपंकेरूहोद्वेघहेतु
स्तं श्री विद्याधर गुरुवरं स्वात्मरामं नमामि।।

श्रीमान जी में पवित्र वाणी व्याख्यान के क्रम में अलौकिक आकर्षण और दूसरों को प्रायोजन गतार्थ कराने की विधियों की शक्ति कूट – कूट कर भरी थी। एक विषय को कई प्रकार से समझाते और अनथक उद्योग के साथ उसकी व्याख्या करते। विद्वानों के साथ संस्कृत भाषा ही में भले प्रकार से बातचीत करते थे श्रीमान जी ने संस्कृत भाषा में ही गुरु–स्तुति, श्री सरस्वतिस्तोत्र इत्यादि रचे है। जिन्हें उनके सेवकों ने प्रकाशित भी किया है।

कई बार ऐसा हुआ कि श्री क्षीरभवानी या डल जाने के लिये सवेरे नौका में बैठे, पंचस्तवी या किसी दूसरे श्लोक का अर्थ करना आरम्भ किया, घंटो इसी एक श्लोक की व्याख्या करते रहे। अनेक क्रमों के अनुसार अनेक अर्थ बतायें, बीच में दूसरे ग्रंथो के श्लोक प्रमाण तौर पर कह देते। श्रवणमग्न होकर शिष्यों को यह ध्यान ही न रहता कि वह कहां जा रहे हैं, कहां पहुँचे, और समय क्या हुआ, खाना पीना भी भूल जाते, इसी भांति संध्या समय को किसी विषय पर

व्याख्यान करने बैठते तो रात का व्यतीत होना प्रतीत ही न होता था। श्लोक अत्यन्त मधुर सुर और उँचे शब्द में इस प्रकार गाते कि श्रोतागण तत्काल देहाभास तक भूल जाते। स्मरण शक्ति उच्चकोटि की थी, श्रीमदीश्वर प्रत्यभिज्ञकार महा माहेश्वराचार्य वर, श्री उत्पलदेवाचार्य विरचिता शिवस्तोत्रावली के श्लोक विशेष करके अलौकिक सुर में पढ़ते थे और साथ उनका शब्दार्थ और भावार्थ सत्पात्रों को समझाने जाते।

श्री स्वामी जी की वाक् – सिद्धि परिचित – ज्ञान और अन्य सिद्धियों के चमत्कारों का वर्णन इसलिये नहीं किया जाता हैं क्योंकि वह कभी भी यह नहीं चाहते थे कि जनता उनहें ऐश्वर्यमान महात्मा समझ कर सांसारिक प्रयोजनों को लेकर उनके पास आयें और उनका सम्मान करें ('सन्मानदाब्रह्यणो नित्यमुद्विजेद्यथा विषा') और न ही श्रीमान जी ने इस प्रकार की इच्छा से जनता को आकर्षित करने का कदापि यत्न किया। हां शरण लेने या सेवा करने से उनका आर्शीवाद और प्रसाद प्राप्त करके किसी की मनोकामना

सिद्ध हुई (जिस के सैकडों उदाहरण हैं) वह और बात है परन्तु इस बात में अनुमात्र भी सन्देह नहीं कि वह सामर्थ्यवान होते हुये भी इसके आधार पर अपनी प्रतिष्ठा जमाने के कदाचिदपि इच्छुक न थे, नहीं तो बस्ती से दूर बनों और गुफाओं में जाकर क्यों बैठते। श्री स्वामी जी रहस्य मार्ग के अनुयायी थे इसलिए उनकी विभूति भी रहस्य प्रकार ही की रहीं, जो कभी अनुग्रह रूप बन कर प्रकट होती, हां यदि विश्व कल्याण या जाति के मंङ्गल की कोई बात होती तो स्वामी जी के गम्भीर हृदय से हितकार और उपकार की इच्छा आर्शीवाद के रूप में प्रकट हो जाती और अंमगल को दूर करती।

श्री स्वामीजी महाराज का उत्तम जीवन–आदर्श निःसन्देह और वास्तविक रूप से भगवत्–मार्ग के अनुयायी सत् पुरूषों के लिये सर्वथा और कल्याण कारी पथदर्शक है, कि विशेषतः काश्मीरी हिन्दू जाति के शैवमतानुवायी सत् पुरूषों में श्रीमान जी का शुभ स्मरण चिरकाल पर्यन्त सुप्रतिष्ठित रहेगा। अस्तु! इति शिवम्।।

यत्पाद पद्म संस्पर्शात्सत्वरं श्याम चेतसां
सुन्दरों जायते बोधः शरणं सोस्तु नः शिवः।।

इति शिवम्

★ ★ ★

श्री गुरु आरती

(1)

भाव पूजा कर सत्गुरु चरनन बारम्बार।
अनुगृह करि अज्ञान हरि मोह घटि करि संहार।
भव सागर दिय तार–जय जय श्री गुरुदेव।।

(2)

वृच चानिवि पुत कर नावि च्यत दर्पण निर्मल।
बुध करि शुध शान्ती दियि धर्मुक असि दियि बल।
दह इन्द्रय शुमरावित करनावि बुड दशहार।
अनुगृह...........

(3)

आत्म लाभच पज़ वथ हावि संकोचस करि नाश।
घट हरि देह अभिमानच नुन हावि स्वात्म प्रकाश।
मूल धरि कर्म वासनायि करि ज्ञान खड़्ग सहतसंहार।
अनुगृह...........

(4)

पंच कृत्युक अभ्यास हावि विमर्श बल दियि दान।
संकलपन क्षय कर नावि मन थवनावि सावधान।
रागद्वेषचि रज़ चटनावि च्यन्मय थवि व्यवहार।
अनुगृह...........

(5)

शक्ति पात ज़ल मल त्रय छलि उपदावि पुज़ वैराग।
बजि दयायि किन बडरावि आत्म उधारूक राग।
पर त पान ह्युवः भासनावि न्यत कर नावि पर उपकार।
अनुगृह...........

(6)

म्यतहंतायि नाश कर नवि पूर्ण भावच दियि थ्यत्।
शक्तिसंकोच गालित थवि विकसित नित्योध्यत्।
भाव ख्युल भासनावि शिव रूप शिव भासि सर्वाकार।
अनुगृह..........

(7)

ज्ञान क्रियायि अनुभव करि असि निर्भय हरि भेद।
स्वात्म रूपुक निश्चय दियि देह दृष्टियि करि छेद।
दुख भासि सुख विष अमृत संसार भासि मोक्षद्वार।
अनुगृह..........

(8)

खस वसि अच नेरि मंज़ थवि असि स्मरच सान न्यथ।
लय त विक्षेप गालित करि बुध थिर निर्मल च्यत।
भेद वृत गालित भासनावि संव्यत् सर्वाधार।
अनुगृह..........

(9)

अनुगृह किन असि थवि न्यथ विमर्शस सन्मुख।
सम भास नावि मान अवमान लाभ हानी सुख दुख।
प्रथ इन्द्रयि किन भासनावि प्रथभाव आत्मस्फार।
अनुगृह..........

(10)

क्रम रूस्तुय असि करनावि च्यत अमृतकुय स्वाद।
परमानन्द थव नावि बनि व्युत्थानस समाध।
भाव मन्डुल भासनावि च्यत शक्ति हुंद विस्तार।
अनुगृह..........

(11)

विषयन हुन्द रस करनावि स्वात्मदेवस अपर्ण।
न्यत असंग चेष्टायि किन थवनावि संतुष्ट मन।
प्रथ भाव रूप बुद्धनावि शिव सुयगव साक्षात्कार।
अनुगृह..........

(12)

परम साहस बल बनि असि न्यत पूर्णाहमभाव।
न्यर अपेक्ष करि भग्यिभाव हरि दियि मुक्तास्वभाव।
पूर्ण भावच तृप्ति दियि थ्यत दियि विश्वाकार।
अनुगृह...........

(13)

भाव बूध पोश लाग्य दीनन गुरु चरर्णाबिन्दन।
न्यत्योय्यथ स्वचमत्कार थवतन आनन्द गण।
हे अनुत्तर श्री विद्याधर सत् गुरु शिव अवतार।
अनुगृह करि अज्ञान हरि मोह घटि करि संहार।
भव सागर दियि तार जय जय श्री गुरु देव

रचियिता दीनानाथ वारिकू

ॐ
शिवाय गुरुवे नमः

दिव्यैश्वर्य विभूतिमन्त इइये सर्वात्मना सर्वदा।
कल्याणं कलयन्ति सर्व जगतां तेभ्योंमहदभ्यों नमः।।

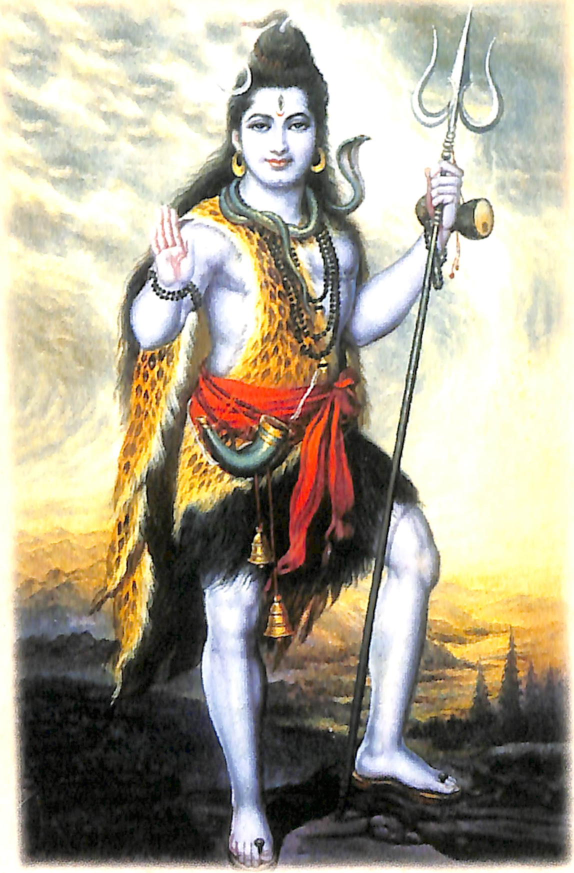

लेखक :
स्व0 दीनानाथ वारिकू मन्त्री "ट्रस्ट" (भूतपूर्व)

प्रकाशक :
श्री स्वामी विद्याधर स्वामी महादेव
शैव आश्रम, जम्मू

प्रिन्टर्स :
राकलैण्ड इंटरप्राइजेज
नई दिल्ली